अध्याय –11

बाज़ार दर्शन : जैनेंद्र कुमार

जन्म – सन् 1905 ई.
मृत्यु – सन् 1988 ई.

जैनेन्द्र कुमार को हिन्दी के मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य का जन्मदाता कहा जाता है। उन्होंने हिन्दी उपन्यास और कहानियों को नयी दिशा दी। वे गंभीर चिंतक भी रहे हैं। गांधीवादी विचारधारा को उन्होंने गहराई से अपने आत्मसात किया है।

परख, अनाम स्वामी, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, जयवर्द्धन और मुक्तिबोध उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उनके कहानी संग्रह हैं– वातायन, एक रात, दो चिड़िया, फाँसी, नीलम देश की राजकन्या तथा पाज़ेब। उनके विचार–प्रधान निबन्ध प्रस्तुत प्रश्न, जड़ की बात, पूर्वादय, साहित्य का श्रेय और प्रेय, सोच–विचार तथा समय और हम उनकी बहुमुखी प्रतिभा के परिचायक हैं।

जीवन के प्रश्नों को सुलझाने में जैनेन्द्र की दृष्टि व्यापक रही है। मुंशी प्रेमचन्द ने उन्हें भारत का गोर्की कहकर महिमामण्डित किया था।

प्रस्तुत निबन्ध बाज़ार दर्शन में बढ़ती उपभोक्तावादी परम्परा एवं बाज़ारवाद पर गहरा मंथन किया गया है। लेखक यह मानता है कि बाज़ार हमारी आवश्यकता की पूर्ति के लिए है; यह विक्रेता और क्रेता दोनों के मन में संतोष व तृप्ति के भाव जगाता है; लेकिन उपभोक्तावादी परम्परा ने आज बाज़ार को अपनी आर्थिक सम्पन्नता के दंभ–प्रदर्शन का साधन बना दिया है। हम बिना आवश्यकता के अकारण ही बाज़ार से अनाप–शनाप वस्तुएँ खरीदते हैं तो इससे बाज़ार में कपट बढ़ता है, कृत्रिम अभाव बनता है और महंगाई बढ़ती है। आज ग्राहक और विक्रेता दोनों ही कपटपूर्ण व्यवहार से हमारे विनिमय और अर्थतंत्र को क्षति पहुँचा रहे हैं। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह अर्थव्यवस्था के लिए घातक है। धन का दुरुपयोग व दम्भ हानिकारक है। बाज़ार हमारी संतुष्टि के लिए होता है न कि असंतोष, तृष्णा व ईर्ष्या–वृद्धि के लिए।

बाज़ार दर्शन

एक बार की बात कहता हूँ। मित्र बाज़ार गए तो थे कोई एक मामूली चीज लेने पर लौटे तो एकदम बहुत–से बंडल पास थे।

मैंने कहा – यह क्या?

बोले – यह जो साथ थीं।

उनका आशय था कि यह पत्नी की महिमा है। उस महिमा का मैं कायल हूँ। आदिकाल से इस विषय में पति से पत्नी की ही प्रमुखता प्रमाणित है। और यह व्यक्तित्व का प्रश्न नहीं, स्त्रीत्व का प्रश्न है। स्त्री माया न जोड़े, तो क्या मैं जोडूँ?फिर भी सच सच है और वह यह कि इस बात में पत्नी की ओट ली जाती है। मूल में एक और तत्त्व को महिमा सविशेष है। वह तत्त्व है मनीबेग, अर्थात् पैसे की गरमी या एनर्जी।

पैसा पावर है। पर उसके सबूत में आस–पास माल–टाल न जमा हो तो क्या वह खाक पावर है! पैसे को देखने के लिए बैंक–हिसाब देखिए, पर पाल–असबाब मकान–कोठी तो अनदेखे भी दीखते हैं। पैसे की उस 'पर्चेजिंग पावर' के प्रयोग में ही पावर का रस है।

लेकिन नहीं। लोग संयमी भी होते हैं। वे फ़िजूल सामान को फ़िजूल समझते हैं। वे पैसा बहाते नहीं हैं और बुद्धिमान होते हैं। बुद्धि और संयमपूर्वक वह पैसे को जोड़ते जाते हैं, जोड़ते जाते हैं। वह पैसे की पावर को इतना निश्चय समझते हैं कि उसके प्रयोग की परीक्षा उन्हें दरकार नहीं है। बस खुद पैसे के जुड़ा होने पर उनका मन गर्व से भरा फूला रहता है।

मैंने कहा – यह कितना सामान ले आए!

मित्र ने सामने मनीबेग फैला दिया, कहा – यह देखिए। सब उड़ गया, अब जो रेल–टिकट के लिए भी बचा हो!

मैंने तब तय माना कि और पैसा होता और सामान आता। वह सामान जरूरत की तरफ देखकर नहीं आया, अपनी 'पर्चेजिंग पावर' के अनुपात में आया है।

लेकिन ठहरिए। इस सिलसिले में एक और भी महत्त्व का तत्त्व है, जिसे नहीं भूलना चाहिए। उसका भी इस करतब में बहुत–कुछ हाथ है। वह महत्व है, बाज़ार।

मैंने कहा – यह इतना कुछ नाहक ले आए!

मित्र बोले – कुछ न पूछो। बाज़ार है कि शैतान का जाल है?ऐसा सजा–सजाकर माल रखते हैं कि बेहया ही हो जो न फँसे।

मैंने मन में कहा, ठीक। बाज़ार आमंत्रित करता है कि आओ मुझे लूटो और लूटो। सब भूल जाओ, मुझे देखो। मेरा रूप और किसके लिए है?मैं तुम्हारे लिए हूँ। नहीं कुछ चाहते हो, तो भी देखने में क्या हरज है। अजी आओ भी। इस आमंत्रण में यह खूबी है कि आग्रह नहीं है आग्रह तिरस्कार जगाता है। लेकिन ऊँचे बाज़ार का आमंत्रण मूक होता है और उससे चाह जगती है। चाह मतलब अभाव। चौक बाज़ार में खड़े होकर आदमी को लगने लगता है कि उसके अपने पास काफी नहीं है। और चाहिए, और चाहिए। मेरे यहाँ कितना परिमित है और यहाँ कितना अतुलित है। ओह!

कोई अपने को न जाने तो बाज़ार का यह चौक उसे कामना से विकल बना छोड़े। विकल क्यों, पागल। असंतोष, तृष्णा और ईर्ष्या से घायल कर मनुष्य को सदा के लिए यह बेकार बना डाल सकता है।

एक और मित्र की बात है। यह दोपहर के पहले के गए–गए बाज़ार से कहीं शाम की वापिस आए। आए तो खाली हाथ!

मैंने पूछा – कहाँ रहे?

बोले – बाज़ार देखते रहे।

मैंने कहा – बाज़ार को देखते क्या रहे?

बोले – क्यों?बाज़ार –

तब मैंने कहा – लाए तो कुछ नहीं!

बोले – हाँ। पर यह समझ न आता था कि न लूँ तो क्या? सभी कुछ तो लेने को जी होता था। कुछ लेने का मतलब था शेष सब–कुछ को छोड़ देना। पर मैं कुछ भी नहीं छोड़ना चाहता था। इससे मैं कुछ भी

नहीं ले सका।

मैंने कहा – खूब!

पर मित्र की बात ठीक थी। अगर ठीक पता नहीं है कि क्या चाहते हो तो सब ओर की चाह तुम्हें घेर लेगी। और तब परिणाम त्रास ही होगा, गति नहीं होगी, न कर्म।

बाज़ार में एक जादू है। वह जादू आँख की राह काम करता है। वह रूप का जादू है पर जैसे चुंबक का जादू लोहे पर ही चलता है, वैसे ही इस जादू की भी मर्यादा है। जेब भरी हो, और मन खाली हो, ऐसी हालत में जादू का असर खूब होता है। जेब खाली पर मन भरा न हो, तो भी जादू चल जाएगा। मन खाली है तो बाज़ार की अनेकानेक चीजों का निमंत्रण उस तक पहुँच जाएगा। कहीं हुई उस वक्त जेब भरी तब तो फिर वह मन किसकी मानने वाला है! मालूम होता है यह भी लूँ, वह भी लूँ। सभी सामान जरूरी और आराम को बढ़ाने वाला मालूम होता है। पर यह सब जादू का असर है। जादू की सवारी उतरी कि पता चलता है कि फ़ैंसी चीजों की बहुतायत आराम में मदद नहीं देती, बल्कि खलल ही डालती है। थोड़ी देर को स्वाभिमान को जरूर सेंक मिल जाता है। पर इससे अभिमान की गिल्टी की ओर खुराक ही मिलती है। जकड़ रेशमी डोरी की हो तो रेशम के स्पर्श के मुलायम के कारण क्या वह कम जकड़ होगी?

पर उस जादू की जकड़ से बचने का एक सीधा–सा उपाय है। वह यह कि बाज़ार जाओ तो मन खाली न हो। मन खाली हो, तब बाज़ार न जाओ। कहते हैं लू में जाना हो तो पानी पीकर जाना चाहिए। पानी भीतर हो, लू का लूपन व्यर्थ हो जाता है। मन लक्ष्य में भरा हो तो बाज़ार भी फैला–का–फैला ही रह जायगा। तब वह घाव बिलकुल नहीं दे सकेगा, बल्कि कुछ आनंद ही देगा। तब बाज़ार तुमसे कृतार्थ होगा, क्योंकि तुम कुछ–न–कुछ सच्चा लाभ उसे दोगे। बाज़ार की असली कृतार्थता है आवश्यकता के समय काम आना।

यहाँ एक अंतर चीन्ह लेना बहुत जरूरी है। मन खाली नहीं रहना चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि वह मन बंद रहना चाहिए। जो बंद हो जायगा, वह शून्य हो जायगा। शून्य होने का अधिकार बस परमात्मा का है जो सनातन भाव से संपूर्ण है। शेष सब अपूर्ण है। इससे मन बंद नहीं रह सकता। सब इच्छाओं का निरोध कर लोगे, यह झूठ है। और अगर 'इच्छानिरोधस्तपः' का ऐसा ही नकारात्मक अर्थ हो तो वह तप झूठ है। वैसे तप की राह रेगिस्तान को जाती होगी, मोक्ष की राह वह नहीं है। ठाट देकर मन को बंद कर रखना जड़ता है। लोभ का यह जीतना नहीं है कि जहाँ लोभ होता है, यानी मन में, वहाँ नकार हो! यह तो लोभ की ही जीत है और आदमी की हार। आँख अपनी फोड़ डाली, तब लोभनीय के दर्शन से बचे तो क्या हुआ? ऐसे क्या लोभ मिट जाएगा?और कौन कहता है कि आँख फूटने पर रूप दीखना बंद हो जायगा?क्या आँख बंद करके ही हम सपने नहीं लेते हैं?और वे सपने क्या चैन–भंग नहीं करते हैं?इससे मन को बंद कर डालने की कोशिश तो अच्छी नहीं। वह अकारथ है। यह तो हठवाला योग है। शायद हठ–ही–हठ है, योग नहीं है। इससे मन कृश भले हो जाय और पीला और अशक्त जैसे विद्वान का ज्ञान। वह मुक्त ऐसे नहीं होता। इससे वह व्यापक की जगह संकीर्ण और विराट् की जगह क्षुद्र होता है। इसलिए उसका रोम–रोम मूँदकर बंद तो मन को करना नहीं चाहिए। वह मन पूर्ण कब है?हम में पूर्णता होती तो परमात्मा से अभिन्न हम महाशून्य ही न होते?अपूर्ण हैं, इसी से हम हैं। सच्चा ज्ञान सदा इसी अपूर्णता के बोध को हम में गहरा करता है। सच्चा कर्म सदा इस अपूर्णता की स्वीकृति के साथ होता है। अतः उपाय कोई वही हो सकता है

जो बलात् मन को रोकने को न कहे, जो मन को भी इसलिए सुने क्योंकि वह अप्रयोजनीय रूप में हमें नहीं प्राप्त हुआ है। हाँ, मनमानेपन की छूट मन को न हो, क्योंकि वह अखिल का अंग है, खुद कुल नहीं है।

पड़ोस में एक महानुभाव रहते हैं जिनको लोग भगत जी कहते हैं। चूरन बेचते हैं। यह काम करते, जाने उन्हें कितने बरस हो गए हैं। लेकिन किसी एक भी दिन चूरन से उन्होंने छः आने पैसे से ज्यादे नहीं कमाए। चूरन उनका आस–पास सरनाम है। और खुद खूब लोकप्रिय हैं। कहीं व्यवसाय का गुर पकड़ लेते और उस पर चलते तो आज खुशहाल क्या मालामाल होते! क्या कुछ उनके पास न होता! इधर दस वर्षों से मैं देख रहा हूँ, उनका चूरन हाथों–हाथ बिक जाता है। पर वह न उसे थोक देते हैं, न व्यापारियों को बेचते हैं। पेशगी आर्डर कोई नहीं लेते। बँधे वक्त पर अपनी चूरन की पेटी लेकर घर से बाहर हुए नहीं कि देखते–देखते छह आने की कमाई उनकी हो जाती है। लोग उनका चूरन लेने को उत्सुक जो रहते हैं। चूरन से भी अधिक शायद वह भगतजी के प्रति अपनी सद्भावना का देय देने को उत्सुक रहते हैं। पर छह आने पूरे हुए नहीं कि भगतजी बाकी चूरन बालकों को मुफ्त बाँट देते हैं। कभी ऐसा नहीं हुआ है कि कोई उन्हें पच्चीसवाँ पैसा भी दे सके! कभी चूरन में लापरवाही नहीं हुई है, और कभी रोग होता भी मैंने उन्हें नहीं देखा है।

और तो नहीं, लेकिन इतना मुझे निश्चय मालूम होता है कि इन चूरनवाले भगतजी पर बाज़ार का जादू नहीं चल सकता।

कहीं आप भूल न कर बैठिएगा। इन पंक्तियों को लिखने वाला मैं चूरन नहीं बेचता हूँ। जी नहीं, ऐसी हलकी बात भी न सोचिएगा। न ही यह समझिएगा कि लेख के किसी भी मान्य पाठक से उस चूरन वाले को श्रेष्ठ बताने की मैं हिम्मत कर सकता हूँ। क्या जाने उस भोले आदमी को अक्षर–ज्ञान तक भी है या नहीं। और बड़ी बातें तो उसे मालूम क्या होंगी। और हम–आप न जाने कितनी बड़ी–बड़ी बातें जानते हैं। इससे यह तो हो सकता है कि वह चूरन वाला भगत हम लोगों के सामने एकदम नाचीज आदमी हो। लेकिन आप पाठकों की विद्वान् श्रेणी का सदस्य होकर भी मैं यह स्वीकार नहीं करना चाहता हूँ कि उस अपदार्थ प्राणी को वह प्राप्त है जो हम में से बहुत कम को शायद प्राप्त है। उस पर बाज़ार का जादू वार नहीं कर पाता। माल बिछा रहता है, और उसका मन अडिग रहता है। पैसा उससे आगे होकर भीख तक माँगता है कि मुझे लो; लेकिन उसके मन में पैसे पर दया नहीं समाती। वह निर्मम व्यक्ति पैसे को अपने आहत गर्व में बिलखता ही छोड़ देता है। ऐसे आदमी के आगे क्या पैसे की व्यंग्य–शक्ति कुछ भी चलती होगी?क्या वह शक्ति कुंठित रहकर सलज्ज ही न हो जाती होगी?

पैसे की व्यंग्य–शक्ति की सुनिए। वह दारुण है। मैं पैदल चल रहा हूँ कि पास ही धूल उड़ाती निकल गई मोटर। वह क्या निकली मेरे कलेजे को कौंधती एक कठिन व्यंग्य की लीक ही आर–से–पार हो गई। जैसे किसी ने आँखों में उँगली देकर दिखा दिया हो कि देखो, उसका नाम है मोटर, और तुम उससे वंचित हो! यह मुझे अपनी ऐसी विडंबना मालूम होती है कि बस पूछिए नहीं। मैं सोचने को हो आता हूँ कि हाय, ये ही माँ–बाप रह गए थे जिनके यहाँ मैं जन्म लेने को था! क्यों न मैं मोटरवालों के यहाँ हुआ! उस व्यंग्य में इतनी शक्ति है कि जरा में मुझे अपने सगों के प्रति कृतघ्न कर सकती है।

लेकिन क्या लोकवैभव की यह व्यंग्य–शक्ति उस चूरन वाले अकिंचित्कर मनुष्य के आगे चूर–चूर होकर ही नहीं रह जाती?चूर–चूर क्यों, कहो पानी–पानी।

तो वह क्या बल है जो इस तीखे व्यंग्य के आगे ही अजेय ही नहीं रहता, बल्कि मानो उस व्यंग्य की क्रूरता को ही पिघला देता है?

उस बल को नाम जो दो; पर वह निश्चय उस तल की वस्तु नहीं है जहाँ पर संसारी वैभव फलता–फूलता है। वह कुछ अपर जाति का तत्व है। लोग स्पिरिचुअल कहते हैं; आत्मिक, धार्मिक, नैतिक कहते हैं। मुझे योग्यता नहीं कि मैं उन शब्दों में अंतर देखूँ और प्रतिपादन करूँ। मुझे शब्द से सरोकार नहीं। मैं विद्वान नहीं कि शब्दों पर अटकूँ; लेकिन इतना तो है कि जहाँ तृष्णा है, बटोर रखने की स्पृहा है, वहाँ उस बल का बीज नहीं है। बल्कि यदि उसी बल को सच्चा बल मानकर बात की जाय तो कहना होगा कि संचय की तृष्णा और वैभव की चाह में व्यक्ति की निर्बलता ही प्रमाणित होती है। निर्बल ही धन की ओर झुकता है। वह अबलता है। वह मनुष्य पर धन की और चेतन पर जड़ की विजय है।

एक बार चूरन वाले भगतजी बाज़ार चौक में दीख गए। मुझे देखते ही उन्होंने जय–जयराम किया। मैंने भी जयराम कहा। उनकी आँखें बंद नहीं थीं और न उस समय वह बाज़ार को किसी भाँति कोस रहे मालूम होते थे। राह में बहुत लोग, बहुत बालक मिले जो भगतजी द्वारा पहचाने जाने के इच्छुक थे। भगतजी ने सबको ही हँसकर पहचाना। सबका अभिवादन लिया और सबको अभिवादन किया। इससे तनिक भी यह नहीं कहा जा सकेगा कि चौक–बाज़ार में होकर उनकी आँखें किसी से भी कम खुली थीं। लेकिन भौंचक्के हो रहने की लाचारी उन्हें नहीं थी। व्यवहार में पसोपेश उन्हें नहीं था और खोए–से खड़े नहीं वह रह जाते थे। भाँति–भाँति के बढ़िया माल से चौक भरा पड़ा है। उस सबके प्रति अप्रीति इस भगत के मन में नहीं है। जैसे उस समूचे माल के प्रति भी उनके मन में आशीर्वाद हो सकता है। विद्रोह नहीं, प्रसन्नता ही भीतर है, क्योंकि कोई रिक्त भीतर नहीं है। देखता हूँ कि खुली आँख, तुष्ट और मग्न, वह चौक–बाजार में से चलते चले जाते हैं। राह में बड़े–बड़े फैन्सी स्टोर पड़ते हैं, पर पड़े रह जाते हैं। कहींभगत नहीं रुकते। रुकते हैं तो एक छोटी, पंसारी की दुकान पर रुकते हैं। वहाँ दो–चार अपने काम की चीज ली, और चले आते हैं। बाज़ार से हठ–पूर्वक विमुखता उनमें नहीं हैं; लेकिन अगर उन्हें जीरा और काला नमक चाहिए तो सारे चौक–बाज़ार की सत्ता उनके लिए तभी तक है, तभी तक उपयोगी है, जब तक वहाँ जीरा मिलता है। जरूरत–भर जीरा वहाँ से ले लिया कि फिर सारा चौक उनके लिए आसानी से नहीं के बराबर हो जाता है। वह जानते हैं कि जो उन्हें चाहिए वह है जीरा नमक। बस इस निश्चित प्रतीति के बल पर शेष सब चाँदनी चौक का आमंत्रण उन पर व्यर्थ होकर बिखरा रहता है। चौक की चाँदनी दाएँ–बाएँ भूखी–की–भूखी फैली रह जाती है, क्योंकि भगतजी को जीरा चाहिए वह तो कोने वाली पंसारी की दुकान से मिल जाता है और वहाँ से सहज भाव में ले लिया गया है। इसके आगे आस–पास अगर चाँदनी बिछी रहती है तो बड़ी खुशी से बिछी रहे, भगत जी उस बेचारी का कल्याण ही चाहते हैं।

यहाँ मुझे ज्ञात होता है कि बाज़ार को सार्थकता भी वही मनुष्य देता है जो जानता है कि वह क्या चाहता है। ओर जो नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं, अपनी 'पर्चेजिग पावर' के गर्व में अपने पैसे से केवल एक विनाशक शक्ति–शैतानी शक्ति, व्यंग्य की शक्ति ही बाज़ार को देते हैं। न तो वे बाजार से लाभ उठा सकते हैं, न उस बाज़ार को सच्चा लाभ दे सकते हैं। वे लोग बाज़ार का बाज़ाररूपन बढ़ाते हैं, जिसका मतलब है कि कपट बढ़ाते हैं। कपट की बढ़ती का अर्थ परस्पर में सद्भाव की घटी। इस सद्भाव के ह्रास पर आदमी आपस में भाई–भाई और सुहृद और पड़ोसी फिर रह ही नहीं जाते हैं और आपस में कोरे ग्राहक

और बेचक की तरह व्यवहार करते हैं। मानो दोनों एक–दूसरे को ठगने की घात में हों। एक की हानि में दूसरे को अपना लाभ दीखता है और यह बाजार का, बल्कि इतिहास का; सत्य माना जाता है। ऐसे बाजार को बीच में लेकर लोगों में आवश्यकताओं का आदान–प्रदान नहीं होता; बल्कि शोषण होने लगता है। तब कपट सफल होता है, निष्कपट शिकार होता है। ऐसे बाजार मानवता के लिए बिडंबना है और जो ऐसे बाजार का पोषण करता है, जो उसका शास्त्र बना हुआ है; वह अर्थशास्त्र सरासर औंधा हैं। वह मायावी शास्त्र है। वह अर्थशास्त्र अनीति–शास्त्र है।

शब्दार्थ–

असबाब – सामान
परिमित– सीमित
नाचीज़ – महत्त्वहीन
अकिंचित्कर – अर्थहीन
पसोपेश – असमंजस
दरकार – जरूरत
पेशगी – अग्रिम
दारुण –भयंकर
स्पृहा – इच्छा

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. लेखक ने बाज़ार की असली कृतार्थता बताई है–

(अ) अभाव जाग्रत करना।
(ब) आवश्यकता के समय काम आना।
(स) अधिकाधिक धन कमाना
(द) अनाप–शनाप सामान खरीदना। ( )

2. भगतजी ने कभी चूरन बेचकर छह आने से ज्यादा नहीं कमाए, क्योंकि–

(अ) उनका चूरन और अधिक नहीं बिकता था
(ब) वे आधुनिक मार्केटिंग नहीं जानते थे
(स) इससे अधिक परिश्रम वे नहीं कर सकते थे
(द) वे संतोषी थे इसलिए और अधिक कमाना ही नहीं चाहते थे ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. लेखक के अनुसार बाज़ार का जादू किस राह से काम करता है ?
2. लेखक ने किस समय बाज़ार न जाने की सलाह दी है ?
3. चूरन वाले भगतजी का जीवन हमें क्या शिक्षा देता है ?
4. पैसे की 'परचेज–पावर' से आप क्या समझते हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1.जो लोग बाज़ार का बाज़ारूपन बढ़ाते हैं ? उनसे बाज़ार पर क्या प्रतिकूल असर पड़ता है ?

2. हमें बाज़ार से वस्तुएँ खरीदते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

निबंधात्मक प्रश्न –

1. बाज़ार दर्शन निबन्ध में लेखक ने बाज़ार का सही उपयोग करने के लिए किन–किन बातों का ध्यान रखने पर बल दिया है ?आप बाज़ार का सही उपयोग किस प्रकार करेंगे ?

2. उपभोक्तावाद से प्रभावित समाज में उपभोक्ताओं को शोषण से बचाने के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे ?

भाषा–सम्बन्धी प्रश्न –

1. तिरस्कार शब्द तिरः+कार से बना है। यह विसर्ग सन्धि है। विसर्ग सन्धि के निम्न शब्दों का सन्धि विच्छेद कीजिए –

   भास्कर, पुरस्कार, निस्सार, निर्बल, निर्जन, वृहस्पति

* * * * *